Reg. No. 694/2009-10 Impact Factor : 7.125
Anukriti (An International Peer Reviewed Refereed Research Journal), Vol. 14, No. 11, November 2024 ISSN : 2250-1193

कथक नृत्य की कथावाचन परम्परा : समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. यास्मीन सिंह
कथक नृत्यांगना, भोपाल (मध्य प्रदेश)

भारतीय कलाओं में नृत्य विधा को विशेष और सम्माननीय स्थान प्राप्त है। वेद–पुराणादि अनेक संस्कृत वाङ्मय नृत्य प्रयोग के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। किन्तु साहित्येतिहास के अध्ययन से किसी नृत्य विशेष का नामोल्लेख प्रायः प्राप्त नहीं होता है। संस्कृत साहित्य और व्याकरण में 'नृत्य' शब्द का प्रमुखता से प्रयोग किया गया है, जबकि वर्तमान प्रचलित किसी भी शास्त्रीय नृत्य का नाम इन ग्रंथों में उपलब्ध नहीं है। अतः वर्तमान शास्त्रीय नृत्यों को उनके नामों से ढूँढना श्रमसाध्य कार्य हो जाता है। वस्तुतः नृत्य अवश्य स्थापित था। अतः सर्वप्रथम नृत्य को अर्थ एवं परिभाषा की दृष्टि से रेखांकित करना आवश्यक है। इसका एक कारण यह भी है, वर्तमानी में प्रचलित कथकादि शास्त्रीय नृत्य शास्त्रों पर आधारित है, ऐसा विद्वानों का सर्वमान्य मत रहा है। विद्वानों ने "'णत्' धातु से नृत्य की उत्पत्ति बताई जाती है, जो कि नाट्य और नृत्त के समावेश से बनता है। ये तो मानी हुई बात है, कि नृत्त या ताण्डव की उत्पत्ति शंकर भगवान द्वारा, नाट्य की उत्पत्ति पितामह ब्रह्मा द्वारा और इन दोनों के परस्पर मेल से भरतोत्तरकाल में नृत्य की उत्पत्ति हुई है।"[1]

आधुनिक विद्वानों ने विभिन्न प्राचीन ग्रंथों के आधार पर नृत्य को परिभाषित किया है। चूँकि इनके अध्ययन का आधार प्राचीन वाङमय ही हैं, अतः प्रथम दृष्ट्या नृत्य की प्राचीनता स्वमेव सिद्ध हो जाती है। प्राचीन साहित्य में नृत्य शब्द का अर्थ एवं परिभाषा इस प्रकार दी गई है– "रसभाव व्यंजनादियुक्त नृत्तमितीर्यते। व्याकरणाचार्य यास्क मुनि ने अपने निरुक्त में नृत्य शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि– 'वहिष्ठो वां स्वानां स्तोमो इतो हुवन्नरा। नरा मनुष्या नृत्यन्ति कर्मसु।।' अर्थात्, नर मनुष्य को कहते हैं क्योंकि ये नृत्यन्ति कर्मसु काम करने में नाचते रहते हैं। काम करते समय अपने शरीरों को खूब हिलाते–डुलाते, इधर–उधर फेकते रहते हैं, इसकी पुष्टि पतंजलि के भाष्य से भी होती है, जिसमें इन्होंने नृत्य शब्द की व्युत्पत्ति 'नृ' धातु से ही नृत्त नामक दो शब्दों का विकास हुआ है। नृत्य के संबंध में दशरूपक के रचियता धनंजय कहते हैं कि– नृत्तं ताल लयाश्रयं। अन्यद् भावाश्रयं नृत्यम्।' अर्थात् ताल और लय पर आश्रित शरीर के विक्षेप को नृत्य कहा गया है और भावपूर्ण अभिव्यक्ति को नृत्य कहा गया है।"[2]

"नृत्य कला के इतिहास का सबसे प्राचीन प्रमाण मोहनजोदड़ो व हडप्पा के उत्खनन से प्राप्त मूर्तियों को माना जा सकता है। ऋग्वेद व अन्य वेदों में भी नृत्यकला का वर्णन मिलता है। वेदकाल के बाद के पौराणिक काल एवं रामायण और महाभारत काल में भी भारतीय समाज में नृत्यकला को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। महाभारत में तो वीर अर्जुन को नृत्य कला व अन्य ललित कलाओं का ज्ञाता बताया गया है। अज्ञातवास के समय वृहन्नला का वेश धारण कर विराट राजा की पुत्री उत्तरा को उन्होंने नृत्य की शिक्षा दी, ऐसा प्रमाण मिलता है।"[3]

वस्तुतः उक्त संक्षिप्त अध्ययन मात्र से ही जहाँ एक नृत्य की प्राचीनता प्रतिबिम्बित होती है, वहीं दूसरी ओर यह तथ्य भी पुष्ट होता है, कि नृत्य मात्र 'नृत्य' था, इसका कोई विशेष नाम या कोई विशिष्ट शैली नहीं थी। कालान्तर में नृत्य के प्रयोग और क्षेत्र विशेष में प्रचलन तथा भाषा के आधार पर सम्भवतः इनका नामकरण हुआ हो, ऐसी सम्भावनाओं की अवहेलना नहीं की जा सकती। जहाँ तक प्रश्न कथक नृत्य का है, तो विद्वानों ने इस नृत्य की प्राचीनता 'कथक', 'कथिक', 'कहुब' आदि शब्द के आधार सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

वर्तमान में कथक नृत्य के संबंध में 'कथा कहे सो कथक कहावे' उक्ति प्रचलित है। "सामान्य बोलचाल की भाषा में कथक शब्द का अर्थ है– "कथा कहने वाला" (कथ = कथा) (कः = कहो) है। यह वर्ग प्राचीनकाल में कथावाचन और उसके अभिनय के लिए प्रसिद्ध रहा है। कथा शब्द आज भी आख्यान तथा हरीकीर्तन के अर्थ में प्रचलित है। स्पष्ट है कि कथक के कलाकारों का कार्य कथावाचन रहा, परन्तु उसे और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए आगे चलकर नृत्य और गीत का सहारा लिया।"[4]

प्राचीन साहित्य में अनेक स्थानों पर 'कथक' शब्द या इससे मिलते–जुलते शब्द प्राप्त होते हैं, जिनका अभिप्राय प्रायः कथा से जोड़कर देखा जाता है। साथ ही कथा कहने वाले या बोलने वाले अथवा बताने वालों का कथिक या कथक या कथाकार भी कहने का उल्लेख प्राप्त होता है। विद्वानों ने कथक शब्द के सम्बन्ध अपने–अपने मत दिये हैं। किसी ने कथक को 'कथा' से जोड़कर देखा है, तो किसी ने 'कथा कहने वाले' से इसका अभिप्राय निश्चित किया है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया है, कि रामायण में लवकुश द्वारा रामकथा का गायन का प्रस्तुत किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसे कुशीलव कहा गया। "रामायण में कत्थक शब्द नहीं मिलता। किन्तु लवकुश के रामकथा गायन से कुशीलव शब्द बनने की बात अवश्य कही जाती है, जिसका कोशगत् अर्थ 'कत्थक' भी बताया गया है।"[5] किन्तु इनके सम्बन्ध में गायन

और वादन की बात स्पष्ट होती है, नर्तन की नहीं। इसी प्रकार कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी कुशीलवों को वाद्य–वादक तथा नाट्य व नृत्य हेतु नट एवं नर्तक शब्द विशिष्ट रूप में प्रयुक्त हुआ है। विद्वानों ने महाभारत में कथक को व्यक्तिपरक या व्यक्तिविशेष बताया है। अर्थात् महाभारत में कथक से आशय सम्भवतः जाति विशेष से रहा होगा, जिनका कार्य कथावाचन रहा होगा। पुराणों की बात करें, तो भविष्य पुराण (मध्यपर्व) में इसे ब्राह्मण जाति के रूप में बताते हुए इन्हें मध्यम जाति का ब्राह्मण निरूपित किया गया है। इसी से सम्बन्धित जाति विशेष के सन्दर्भ में महाभारत में ग्रन्थिक जाति का उल्लेख प्राप्त होता है और कहीं–कहीं इन्हें 'कथिक' भी कहा गया है।

आधुनिक विद्वानों ने 'कथक' शब्द की व्याख्या हेतु संस्कृत व्याकरण को ही आधार स्वरूप ग्रहण किया है। कथक नृत्य के सम्बन्ध में यह तथ्य प्रचलित है, कि यह पूर्णतः भावों पर आश्रित नृत्य है। डॉ.पुरू दाधीच ने कथक अथवा कत्थक की व्युत्पत्ति के संबंध कहा है कि– 'कथक संस्कृत की दशम् गण की 'कथ्' धातु से (कथ् + कर्त्तरिण्वुल) एक कृदंत शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति निम्नांकित प्रकार से की गई है– "कथयति यः स कथकः।" अर्थात् जो कथन करे, वह 'कथक' है।

शब्द कल्पद्रुम में इस शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है– "कथकः त्रि (कथयति यः। कथक + कर्त्तरिण्वुल) वक्ता। कथोपजीवी। नाटक वर्णनकर्त्ता। तत्पर्य्यायः। एक नट। 2 कथाप्राणः। 3 इति शब्द–रत्नावली। (यथा महाभारते (1/215/3) "कथकाश्चापरे राजन् श्रमणश्च वनौकसः)।"[6] "ग्रंथकर्तृ विशेषः (यथा अनुमान चिन्तामणि – वाचत्कसाध्यनियमच्युतोऽपि कथकैरूपाधिरुद्भाव्य)।"[7]

वा.शि.आप्टे के अनुसार– 'संस्कृत शब्दकोष में प्राप्य प्रमाणों के आधार पर इसका अर्थ कहानी कहने वाला, वर्णन करने वाला, मुख्य अभिनेता, झगड़ालू किया है।'[8] 'पाली शब्दकोष में कथक शब्द 'उपदेशक' के अर्थ में प्रयोग किया गया है। नेपाली शब्द कोष में इसका अर्थ 'वर्णन करने वाला' या 'व्याख्याता' बताया गया है। यह अर्थ परम्परागत् कथक शब्द को मुख्य तीन विशिष्टताओं से सम्बद्ध करती है– कथा, अभिनय और उपदेश। यदि इन तीनों विशेषताओं को संयुक्त रूप से ग्रहण किया जाये तभी कदाचित् "कथक" शब्द का सम्पूर्ण व्यक्तित्व इस अर्थ में प्रकट होगा। कथक वह व्यक्ति विशेष है जो लोकोपदेश के लिए अभिनय के माध्यम से कथा प्रस्तुत करे।'[9]

इसी क्रम में ब्रह्मपुराण में कथक शब्द का प्रयोग अभिनेता, गायक तथा नर्तक के लिए भी हुआ। पुराण सन्दर्भ कोश में कत्थक का अर्थ अभिनेता और कहानी सुनाने वाले से जोड़कर देखा गया है। जैन साहित्यों एवं शब्दकोशों में 'कहुब' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिससे आशय कथाकार, नाटक का वर्णन करने वाला और एकल प्रदर्शक भी कहा गया है। 'हिन्दी शब्द सागर' (भाग–2) में कथक शब्द का अर्थ एक जाति से है, जिसका कार्य गायन, वादन व नर्तक करना बताया गया है। साथ ही इसे नृत्य की एक शैली भी बताया गया है।

नाट्य, नृत्यादि कलाओं के क्षेत्र में भरत के नाट्यशास्त्र का विशेष महत्त्व है। नाट्यशास्त्र में प्राप्त उल्लेख के अनुसार इसकी रचना चारों वेदों के माध्यम से हुई है, अतः इसे पंचम नाट्यवेद भी कहा जाता है। नाट्यशास्त्र में 'कथक' नामक किसी नृत्य का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। नाट्यशास्त्र का निर्माण वेदों से ग्रहित तत्वों से हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि वैदिक युग में भी नृत्य व संगीत का कोई न कोई रूप अवश्य था। वैदिक युग में यज्ञ और नाट्य कर्मों के अंतर्गत नट, नर्तक, सूत, सूत्रधार, किरात, चारण, सैमिक, भाण्ड और भाट आदि जातियों का उल्लेख अवश्य मिलता है। यहाँ नर्तक शब्द नृत्य के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है, ऐसा कहा जा सकता है। क्योंकि नाट्यशास्त्र में नाट्य, नृत्त का विशेष रूप से लक्षण विधान निरूपित किये गये हैं। भरत ने अभिनय और इसके भेदों का जो विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है, वह नाट्य के साथ–साथ समान रूप से नृत्य में भी प्रयुक्त होता है। यद्यपि यह ग्रंथ 'कथक' शब्द को परिभाषित नहीं करता तथापि आंगिकादि अभिनयों का प्रयोग वर्तमान कथक नृत्य में विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है, जिसका विस्तृत अध्ययन नाट्यशास्त्र में उल्लिखित है।

भरत के पश्चात् अन्य परवर्ती आचार्यों ने भी नृत्योपयोगी तत्वों का विवेचन किया, जिसमें अभिनयदर्पण, नाट्यदर्पण, संगीतरत्नाकर आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है, किन्तु इनमें भी नृत्य को ही प्रमुखता दी गई है।

"ईसा की सातवीं शताब्दी से संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक काव्य लिखने का शुभारंभ बाणभट्ट की गद्य रचना 'हर्षचरित' से हुआ है। इस ग्रन्थ में अनेक संगीतजीवी, जातिपरक् संज्ञायें प्राप्त होती हैं, जिसमें कथक शब्द भी है। 11वीं शताब्दी के ग्रंथ 'मानसोल्लास' में कथक शब्द के प्राचीन अर्थ पर प्रकाश डालने वाला एक महत्वपूर्ण अंश प्राप्त होता है, जिसकी ओर अभी तक विद्वानों का ध्यान नहीं जा सका है। सोमेश्वर रचित 'मानसोल्लास' के नृत्य–विनोद में न होकर कथा–विनोद में कथक शब्द का पाया जाना भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि 11वीं शताब्दी तक कथक शब्द का संबंध नर्तन से नहीं अपितु कथा से था। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि मानसोल्लास के नृत्य–विनोद में नर्तकों के जो 6 प्रकार कहे गये हैं उनमें भी कथक शब्द प्राप्त नहीं होता–

नर्तकाः षट्प्रकाराः श्योनर्तकी नटनर्त्तकौ। वैतालिकाश्चारणाश्च तथा कोल्लटिका अपि।।

उल्लेखनीय है कि उपलब्ध ग्रंथों में कालक्रम की दृष्टि से मानसोल्लास प्रथम ग्रंथ है जिसमें कथक संज्ञा वाले व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले कार्य की पद्धति को स्पष्ट किया गया है।"[10]

"अमरकोश के द्वितीय खण्ड वर्ग संख्या 10वें के 12वें श्लोक में कोशकार अमर सिंह ने लिखा है कि– चरणस्तु कुशीलताः (2/10/12)। चारण तथा कुशीलव में दो कत्थक के नाम हैं। शब्द कल्पद्रुम के अनुसार– जो व्यक्ति नृत्य, गीत नामक विद्या का घूम–घूमकर प्रचार करता हो, वह चारण कहलाता है। पद्मपुराण भी यही कहता है कि जो देवी–देवताओं की स्तुति को गायन आदि के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं, वे चारण कहलाते हैं। 10वीं शताब्दी का ग्रंथकार अमरसिंह कुशीलवों व चारणों को एक ही वर्ग अथवा श्रेणी का बताता है तथा उसकी परिभाषा भी वही है, जो इस शब्द के धातुगत् अर्थ से बनती है अथवा आज के 'कत्थक' बताते हैं– कथा कहे सो कत्थक–कत्थकों द्वारा आज भी कत्थक शब्द की यह परिभाषा सामान्यतः प्रस्तुत किये जाते हैं।"[11]

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह ज्ञात होता है, कि 'कथक' शब्द को प्रायः व्यावसायिक कला के रूप में देखा गया है। साथ ही व्यक्ति, जाति, विशेषण आदि के रूप में इस शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। कथक के साथ–साथ कथिक, कुहुब आदि शब्द भी इसी सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। किन्तु उक्त शब्दों का आशय सीधे तौर पर वर्तमान नृत्य से है अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतान्तर भी लक्षित होता है। डॉ. चेतना ज्योतिष 'कथक कल्पद्रुम' में लिखती हैं, कि– "कथक शब्द मात्र का सम्बन्ध वर्तमान कथक नृत्य शैली से जोड़ देना युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता। यद्यपि कुछ विद्वान लेखकों ने यह स्वीकार किया है, कि प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होने वाला कथक शब्द कथावाचन की परम्परा को पुष्ट करता है, न कि किसी नृत्य परम्परा को।"[12]

परम्परा की दृष्टि से देखें, तो ग्रन्थिक, कुशीलव, चारण, ढाढा–ढाढिन, नट और भाट, धवला जाति, ब्राह्मण जाति आदि समय–समय पर प्रचलित रहे हैं। इन सभी जातियों को मुख्यतः कथा को कहने, बोलने, गाने के अभिप्राय की दृष्टि से देखा जाता है, अतएव इन्हें कथक से भी जोड़ दिया गया है। डॉ. ज्योतिष इस सम्बन्ध में लिखती हैं, कि– "कथिकों के विषय में एक ऐतिहासिक तथ्य हम सभी जानते हैं, कि वे विभिन्न पौराणिक कथाओं की रोचक प्रस्तुति के माध्यम से जीविकोपार्जन के साथ–साथ सामाजिक उपदेश का कार्य भी सुचारू रूप से सम्पन्न करते थे। इस रूप में उस महान उद्देश्य को आज के कथक में नहीं देखा जा सकता।"[13]

डॉ. चेतना ज्योतिष ने कथक शब्द और कथिकों की ऐतिहासिकता विषय जो तर्क दिये हैं, उन्हीं के आधार पर वे पुनः 'कथक' शब्द के अर्थ, कथावाचन की परम्परा और इसके साथ गायन, वादन और नृत्य से जुड़ी प्राचीन अवधारणाओं के आधार आधुनिक कथक नृत्य की परिकल्पना पर संशय व्यक्त करती हैं, जिसका समर्थन पं. तीरथ राम आज़ाद भी समान रूप करते हैं। डॉ. ज्योतिष लिखती हैं, कि "कथक गा–बजाकर और नाचकर कथा कहते थे, तो फिर प्रश्न यह उठता है, कि उस परम्परा में ऐसा कौन–सा व्यवधान आ पड़ा कि वर्तमान कथक शैली के नृत्य में गाना, बजाना और नाचना तो बचा रह गया, किन्तु कथा कहना जो कि उसका आधार तत्व था, समाप्तप्रायः हो गया। क्योंकि जितना–सा कथा का अंश आज हम कथक में पाते हैं, उस रूप में तो कथा अथवा कथावस्तु प्रत्येक नृत्य शैली में साथ चलती है।"[14] पं. तीरथराम सीधे–सीधे डॉ.ज्योतिष के उक्त मत का समर्थन करते हुए लिखते हैं, कि– 'ये सारी बातें केवल अटकलबाजियाँ' की कही जा सकती हैं, क्योंकि उनके पीछे कोई ठोस प्रमाण नहीं और आज के युग की वैज्ञानिक शैली प्रत्येक बात को तर्क और विवेक के आधार पर ग्रहण करना चाहती है, न कि केवल कल्पना और अनुमान के आधार पर।"[15]

उक्त विद्वानद्वय के विचारों से पृथक् कुछ अन्य विद्वानों ने भी कथक के सम्बन्ध में अपने–अपने विचार प्रकट किये हैं, जिसमें उन्होंने कथावाचन या कथा कहने की परम्परा को वर्तमान कथक नृत्य से जोड़ते हुए अपनी बात कही है। इस सम्बन्ध में डॉ.माया टॉक लिखती हैं, कि– "कालान्तर में कथकों ने अपनी कथा को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए नृत्य और गीत की प्रधानता का समावेश अपने कथावाचन में किया। इस प्रकार कथावाचन की इसी परम्परा में नृत्य का समावेश हुआ, जिसे कथक कहा जाने लगा।"[16]

उक्त विद्वानों के मतों के आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुँचना कुछ असहज हो जाता है, क्योंकि कथक शब्द के अर्थ और उसकी परिभाषा के सम्बन्ध में विद्वानों में मत–मतान्तर हैं। कुछ विद्वान जहाँ कथक का सम्बन्ध प्राचीन संस्कृति साहित्य से जोड़ते हुए कथावाचन की परम्परा से सम्बन्ध स्थापित करते हैं, तो कुछ विद्वान इन्हीं सम्बन्धों को निरर्थक मानते हैं। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है, कि यदि वर्तमान कथक का आधुनिक स्वरूप प्राचीन कथावाचन परम्परा से नहीं था, तो फिर इसका आधार क्या है, यह स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं होता। दूसरी बात यह है, कि यदि कथावाचन की प्राचीन परम्परा को ही आधुनिक कथक मान लिया जाए, तो भी यह बात प्रमाणित रूप से स्पष्ट नहीं हो पाती है, कि कथावाचन की परम्परा किस प्रकार कथक नृत्य में परिवर्तित हो गयी, जबकि प्रश्न के प्रतिउत्तर में किसी भी विद्वान ने कोई स्पष्ट आधार नहीं दिया है। कथक के प्राचीन स्वरूप के विषय में प्रायः सभी विद्वानों ने कल्पना के आधार पर ही अपने–अपने तथ्यों को रखते हुए इस नृत्य के स्वरूप को पुष्ट करने का प्रयास किया है।

कथक शब्द के अर्थ एवं परिभाषा की दृष्टि से "कथा कहे सो कथक कहावे" उक्ति सर्वथा अधिक प्रचलित है। अतः वर्तमान कथक समाज में कथक की यही परिभाषा सर्वमान्य रूप से ग्रहण व स्वीकार की

गई है। किन्तु प्राचीन ग्रंथों में जिस 'कथक' या इसके समान शब्द प्राप्त होते हैं, वे या तो कथावाचन तक ही सीमित रहे हैं अथवा किसी जाति विशेष तक जो कथा गायन, वादन और कहीं–कहीं अभिनय का कार्य भी करते थे। वर्तमान में कथक शब्द एक नृत्य के रूप में विख्यात है। इस संबंध में डॉ. माया टाक का मत उल्लेखनीय है, जिसके अनुसार– "प्राचीन एवं मध्य कालीन ग्रंथों के आधार पर निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं, कि कथक शब्द का प्रयोग प्राचीनकाल में एक व्यक्ति के लिए है, जो नृत्य और अभिनय के साथ पौराणिक (धार्मिक) कथाओं को प्रस्तुत करता था। किन्तु आज कथक शब्द नृत्य के लिए प्रयुक्त होता है।"[17]

डॉ. जीतेश गड़पायले 'कथावाचन' की परम्परा पर दृष्टिपात करते हुए लिखते हैं, कि– "'कथा कहने' का तात्पर्य किसी पौराणिक घटना को मुख से बोलने, कहने या कहते हुए उसमें निहित पात्रों, दृश्यों और चारित्रिक विशेषताओं को प्रेक्षकों के समक्ष प्रस्तुत करने से रहा होगा, जिसके लिए कथा कहने के दौरान समय–समय पर अभिनय का आश्रय भी लिया गया हो, जिससे कथा को और अधिक रोचक रूप से प्रस्तुत किया जा सके। इसी प्रकार कुछ लोक या जनप्रचलित वाद्यों के प्रयोग से वादन का समावेश भी कथा कहने वालों ने किया होगा, जिससे कथा में निहित मूल भावों को ध्वनि के माध्यम और अधिक सम्प्रेषनीय बनाया जा सके।"[18]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है, कि कथावाचन की परम्परा, जिसमें गायन और वादन तो था ही, साथ में अभिनय का भी समावेश था, का धीरे–धीरे विकास हुआ। चूँकि विद्वानों के अनुसार कथाओं का मुख्य विवेच्य विषय धार्मिक था, अतः इस परम्परा का पल्लवन मंदिरों में हुआ, जहाँ से शनैः शनैः विकसित होते हुए इसमें अभिनय के साथ–साथ नृत्य का भी समावेश होता गया, इस बात की प्रबल संभावना दिखाई देती है। कालान्तर में कथावाचन की विकसित परम्परा व पद्धति ने 'कथक' नृत्य का स्वरूप ले लिया। साथ ही, कथक नृत्य के संबंध में प्रचलित इस विचारधारा को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता है कि जिस 'कथक' शब्द की परिभाषा वर्तमान परिदृश्य में प्राप्त होती है, उसकी निर्मिति में अनेक कालों और अनेकानेक विचारधाराओं का समावेश है। वस्तुतः कथक शब्द आज अपने आप में परिपूर्ण और सार्थक है, अर्थ और परिभाषा की दृष्टि से भी तथा प्रयोग और सिद्धान्त की दृष्टि से भी।

संदर्भ सूची :

1 मांडवी सिंह, 'भारतीय संस्कृति में कथक परम्परा', स्वाति पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1990, पृ. 35
2 श्रीमती वर्षा अरुण पाटिल, 'कथक नृत्य शैली पर मुगल प्रभाव', (शोध प्रबंध), पृ. 62
3 मांडवी सिंह, 'भारतीय संस्कृति में कथक परम्परा', स्वाति पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1990, पृ. 1–2
4 टाक, डॉ. माया, 'ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कथक नृत्य', कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, पृ. 1
5 श्रीमती सरिता चौहान, 'भारतेन्दु हरिशचन्द्र के काव्य और नाट्य साहित्य का नृत्य के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन' (शोध प्रबंध), पृ. 74
6 स्यार, राजा– राधाकान्तदेव बहादुरेण, 'शब्द कल्पद्रुम', चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, द्वितीय भाग, पृ. 17
7 दाधीच, डॉ. पुरू, 'कथक नृत्य शिक्षा', बिन्दु प्रकाशन, इन्दौर, तृतीय संस्करण 2004, भाग–2, पृ. 72
8 आप्टे, वामन शिवराम, 'संस्कृत–हिन्दी–कोश', न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली, छठवाँ संस्करण 2002, पृ. 242
9 दाधीच, डॉ. पुरू का लेख– 'कथक नृत्य के उद्भव संबंधी विभिन्न मान्यतायें एवं प्रस्थापनाएँ', संगीत कला विहार, मई 1982, वर्ष 35, अंक 5, पृ. 128
10 ज्योतिष, डॉ. चेतना, 'कथक कल्पद्रुम', अभिनव प्रकाशन, मंडला, द्वितीय संस्करण 2004, पृ. 169
11 डॉ.ज्योति बख्शी, 'कथक भाव पक्ष के सृजनात्मक आयाम', पृ.202
12 ज्योतिष, डॉ. चेतना, 'कथक कल्पद्रुम', अभिनव प्रकाशन, मंडला, द्वितीय संस्करण 2004, पृ. 163
13 ज्योतिष, डॉ. चेतना, 'कथक कल्पद्रुम', अभिनव प्रकाशन, मंडला, द्वितीय संस्करण 2004, पृ. 166
14 ज्योतिष, डॉ. चेतना, 'कथक कल्पद्रुम', अभिनव प्रकाशन, मंडला, द्वितीय संस्करण 2004, पृ. 166
15 आज़ाद, पं. तीरथराम, 'कथक दर्पण', नटेश्वर कला मंदिर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 157
16 टाक, डॉ. माया, 'ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कथक नृत्य', कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति 2006, पृ. 4
17 टाक, डॉ.माया, 'ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कथक नृत्य', कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति 2006, पृ. 3
18 गड़पायले, जीतेश, 'कथक नृत्य में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों का विश्लेषणात्मक अध्ययन', शोध–प्रबन्ध, इं.क.सं.वि.वि., खैरागढ़, 2017, पृ. 8